© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 679-683

तात्पर्या शक्ति के स्वरूप का विवेचन

प्रगति देवांशी त्रिपाठी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

शोध आलेख सार – साहित्याचार्यों ने वाचक, लक्षक तथा व्यंजक इन तीन प्रकार के शब्दों को स्वीकार किया है तथा वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ इस नाम से तीन प्रकार के अर्थों को भी मान्यता प्रदान की है। इन तीन प्रकार के अर्थों का बोध कराने वाली वृत्तियाँ भी तीन प्रकार की हैं, जिनके नाम अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना है। परन्तु मीमांसक आचार्य चौथे प्रकार के 'तात्पयार्थ' नामक अर्थ को भी अङ्गीकार करते हैं तथा उसके बोध के लिए तात्पर्या शक्ति को भी स्वीकार करते हैं। इन मीमांसक आचार्यों के भी दो मत हैं, जिनमें अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद के नाम परिगणित किये जाते हैं। अभिहितान्वयवाद का अर्थ है– अभिहितस्य अन्वय अर्थात् अभिहित पदार्थ का अन्वय। इसमें आकाङक्षा, योग्यता तथा सन्निधि की आवश्यकता होती है। इस मत के पोषक आचार्य कुमारिल भट्ट तथा उनके अनुयायी पार्थसारथि मिश्र हैं। इसी प्रकार अन्विताभिधानवाद का तात्पर्य है– 'अन्वितस्य अभिधानम्' अर्थात् अन्वित का अभिधान। इस मत के समर्थक आचार्य प्रभाकर और उनके अनुयायी शालिकनाथ मिश्र हैं।

मुख्य शब्द– मीमांसक, अभिहितान्वयवाद, तात्पर्या, शक्ति, अन्विताभिधानवाद।

संस्कृत साहित्याचार्यों ने तीन प्रकार के शब्द स्वीकार किए हैं– वाचक, लक्षक तथा व्यंजक।[1] शब्द के समान ही तीन प्रकार के अर्थ माने गए हैं– वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यङ्ग्यार्थ।[2] 'वाच्यार्थ' शब्द का साक्षात् सङ्केतित अर्थ होता है। इसे 'मुख्यार्थ भी कहा जाता है। इस वाच्यार्थ पर आश्रित किन्तु वाच्यार्थ से भिन्न 'लक्ष्यार्थ' होता है। व्यङ्ग्यार्थ 'अन्यार्थ' रूप होता है। इन तीनों अर्थों का बोध तीन प्रकार की शब्द शक्तियों अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना से होता है। इन तीनों को ही 'शब्द वृत्तियां' या 'शब्द व्यापार' भी कहा जाता है। वाच्यार्थ 'अभिधा' द्वारा बोधित होता है।[3] यह अभिधा शब्द की साक्षात् शक्ति होती है। यही शब्द की प्रथम शक्ति होती है लक्षणा तथा व्यंजना शक्तियां इस पर आश्रित होती हैं। साहित्यदर्पणकार के अनुसार– सङ्केतित अर्थ का बोध कराने वाली तथा शब्द की अन्य लक्षणा व व्यंजना शक्तियों से अव्यवहित प्रथम शक्ति 'अभिधा' कहलाती है।[4]

अभिधा को ही 'ईश्वरेच्छारूप' माना जाता है। अलङ्कारशेखरकार के अनुसार– शक्ति (अभिधा), लक्षणा तथा व्यंजना इन तीनों में 'शक्ति' ईश्वरेच्छारूप होती है और इसे ही 'सङ्केत' भी कहा जाता है।[5] लक्ष्यार्थ 'लक्षणाशक्ति' द्वारा प्रतीत होता है। लक्षणा को शब्द की 'आरोपिता शक्ति' माना जाता है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार–मुख्यार्थ अथवा अभिधेयार्थ का बाध होने पर रूढि अथवा किसी प्रयोजन विशेष के कारण मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ का ज्ञान, जिस शक्ति द्वारा होता है, उसे 'लक्षणा' कहते हैं।[6]

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 679-683

आचार्य मम्मट भी लक्षणा को आरोपिता शक्ति मानते हैं। उनके अनुसार– ''मुख्यार्थ का बाध होने पर, उस मुख्यार्थ से अन्वित (सम्बन्धित) रूढि अथवा प्रयोजन के कारण जिस शब्द शक्ति के द्वारा जो अन्य अर्थ लक्षित होता है वह शब्दशक्ति लक्षणा कहलाती है। यह आरोपिता शक्ति मानी जाती है।''[7]

उदाहरणार्थ :– 'गङ्गायां घोषः' इस वाक्य में 'गङ्गा' का अर्थ है– जल की धारा तथा 'घोष' का अर्थ है– आभीर पल्ली या आभीरों की बस्ती। गङ्गा की जल धारा के ऊपर आभीरों की बस्ती नहीं रह सकती है, इसलिए यहाँ अन्वय के अनुपपन्न होने के कारण 'गङ्गा' पद लक्षणा से 'तट' रूप अर्थ का बोधक होता है। इसी प्रकार 'कर्मणि कुशलः' इत्यादि में 'कुशल' शब्द 'दक्षता' अर्थ में रूढ होता है।

मुख्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ के बाद 'व्यङ्ग्यार्थ' आता है जो कि व्यंजना द्वारा प्रतीत कराया जाता है। यह व्यंजना अभिधा तथा लक्षणा पर आश्रित होती है तथा इन दोनों के विरत हो जाने पर प्रवृत्त होती है। व्यंजना के द्वारा ही प्रयोजन की प्रतीति करायी जाती है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार– अभिधा आदि के विरत हो जाने पर जिससे अन्य अर्थ का बोध होता है, वह शब्द शक्ति 'व्यंजना' कहलाती है।[8] यह शब्दशक्ति शब्द तथा अर्थ दोनों में रहती है। आचार्य मम्मट के अनुसार जिस प्रयोजन विशेष की प्रतीति कराने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है केवल शब्द से गम्य उस प्रयोजन की प्रतीति कराने में 'व्यंजना' के अतिरिक्त अन्य शब्द व्यापार समर्थ नहीं हैं।[9]

उदाहरणार्थ :– 'गङ्गायां घोषः' इत्यादि वाक्य में वक्ता के 'गङ्गायां घोषः' कहने का तात्पर्य है– 'गङ्गा' के शीतत्व पावनत्व की प्रतीति कराना, जो कि 'गङ्गातटे' कहने पर नहीं होगी। अतः यहाँ पर 'गङ्गायां' का अर्थ लक्षणा द्वारा 'गङ्गा की अतिशय निकटता' प्राप्त होता है। उस अतिशय निकटता से गङ्गा के शीतत्व, पावनत्व की प्रतीति व्यंजना द्वारा होती है।

सामान्यतः आचार्यों को यही तीन प्रकार के अर्थ अभिमत हैं, परन्तु मीमासंक आचार्य इन वाच्य, लक्ष्य तथा व्यङ्ग्य तीनों अर्थों से भिन्न 'तात्पर्यार्थ' नामक चौथा अर्थ भी स्वीकार करते हैं, परन्तु मीमांसक व्यंजना शक्ति को स्वीकार नहीं करते हैं। अतः उनके मत में यह तीसरी शब्द शक्ति ही है। आचार्य मम्मट ने मीमांसकों के इसी मत की ओर सङ्केत करते हुए कहा है– 'तात्पर्याथोऽपि केषुचित्।'[10] वस्तुतः इस विषय में मीमांसकों के दो मत प्रचलित हैं जो 'अभिहितान्वयवाद' तथा 'अन्विताभिधानवाद' के नाम से प्रसिद्ध है।

अभिहितान्वयवाद– प्रसिद्ध मीमांसक विद्वान् कुमारिल भट्ट तथा उनके अनुयायी पार्थसारथि मिश्र आदि का मत 'अभिहितान्वयवाद' के रूप में प्रसिद्ध है। 'अभिहितान्वय' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– 'अभिहितस्य अन्वय इति अभिहितान्वयः' अर्थात् 'अभिहित पदार्थ का अन्वय'। 'अभिहित का अन्वय कहने से आशय है कि अभिधा द्वारा जिन पदों के अर्थों का बोध हो गया है, ऐसे पद ही अन्वित होते हैं। इस प्रकार अभिहितान्वयवाद का अभिप्राय यह है कि पदों से सर्वप्रथम उनके अर्थों का बोध होता है। इनके अनुसार पद से मात्र उनके अर्थों का बोध होता है, परस्पर सम्बन्धों का नहीं। अतः उन पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध, जो पदों से उपस्थित नहीं हुआ है, वाक्यार्थ मर्यादा से उपस्थित होता है।

सर्वप्रथम पदों के द्वारा पदार्थ अभिहित अर्थात् अभिधा शक्ति द्वारा बोधित होते हैं, तथा बाद में वक्ता के तात्पर्य के अनुसार उनका परस्पर अन्वय या सम्बन्ध होता है, जिससे वाक्यार्थ की प्रतीति होती है। इस मत में पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध पदों से नहीं, अपितु वक्ता के तात्पर्य के अनुसार होता है, इसलिए उसको 'तात्पर्यार्थ' कहते हैं,

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 679-683

वही 'वाक्यार्थ' कहलाता है और उसकी बोधक शक्ति को 'तात्पर्याशक्ति' कहते हैं। काव्यप्रकाशकार ने इसे इस प्रकार वर्णित किया है–

'आकाङ्क्षा योग्यता–सन्निधिवशाद् वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पयार्थो विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीति 'अभिहितान्वयवादिनां' मतम्।'[11]

अर्थात् यह तात्पर्यार्थ आकाङ्क्षा, योग्यता तथा सन्निधि के बल से उपस्थित पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध होने में प्रतीत होता है तथा अपदार्थ अर्थात् पदों के अर्थों से भिन्न होता है।

पदों में आकाङ्क्षा, योग्यता तथा सन्निधि होने पर ही वे समुदित होने पर वाक्य कहलाते हैं।

आकाङ्क्षा के विषय में साहित्यदर्पणकार का कथन है–किसी ज्ञान की समाप्ति या पूर्ति का न होना ही आकाङ्क्षा है।[12] वाक्यार्थ की पूर्ति के लिए किसी पदार्थ की जिज्ञासा का बना रहना आकाङ्क्षा कहलाती है। यह श्रोता की जिज्ञासारूप होती है।[13] एक पद को सुनने के बाद वाक्य के अन्य पदों को विना सुने पूरे अर्थ का ज्ञान नहीं होता है, इसलिए वाक्य के अगले पद को सुनने की इच्छा श्रोता के मन में उत्पन्न होती है। इसी का नाम आकाङ्क्षा है। आकाङ्क्षा से रहित पदसमुदाय को वाक्य नहीं माना जाता अन्यथा 'गौरश्वः पुरूषो हस्ती' इस पद समूह को भी वाक्य मानना पड़ेगा।[14] पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध में बाधा का अभाव ही 'योग्यता' कहलाती है।[15] जो पदार्थ जिस पदार्थ के साथ सम्बन्ध करने में बाधित न हो उसे योग्य पद कहते है। उदारणार्थ 'जलेन सिंचति' इत्यादि पद समूह वाक्य कहे जाते हैं क्योंकि जल तथा सेचन के सम्बन्ध में बाधा का अभाव है अर्थात् जल में सेचन की योग्यता है अतः इससे वाक्यार्थ बोध होता है परन्तु 'वह्निना सिंचति' में वह्नि का सेंचन के साथ सम्बन्ध न हो पाने से योग्यताभाव है और यह वाक्य नहीं कहा जाता है।

सन्निधि को 'आसत्ति' भी कहते हैं। सन्निधि का अर्थ है– बुद्धि का अविच्छेद अर्थात् एक ही पुरूष द्वारा अविलम्ब पदों का उच्चारण करना। यदि एक ही व्यक्ति द्वारा घंटे–घंटे भर बाद में पदों का अलग–अलग उच्चारण किया जाय तो वे सब मिलकर वाक्य नहीं कहला सकते क्योंकि उनमें सन्निधि नहीं है।

इन आकाङ्क्षा, योग्यता तथा सन्निधि के बल से जब पद अपने पदार्थों का बोध करा देते हैं तब उनका अन्वय होता है, यही अभिहितान्वयवादियों का मत है।

अन्विताभिधानवाद– इस सिद्धान्त के प्रतिपादक प्रभाकर और उनके अनुयायी शालिकनाथ मिश्र आदि हैं। अन्विताभिधान का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– 'अन्वितस्य अभिधानम् अर्थात् अन्वित पदों का ही अभिधान होता है। इस मत के अनुसार–पद सर्वप्रथम अन्वित होते हैं, तत्पश्चात् अर्थ का बोध करातें हैं, अर्थात् पद सर्वप्रथम पदार्थ का बोध कराते हैं, तत्पश्चात् अन्वित होते हों यह मानना अनुचित है और उनके अन्वय के लिए किसी अन्य तात्पर्या शक्ति, की कल्पना करना भी अनुचित है। पहले से अन्वित पदार्थों का ही अभिधा से बोध होता है। अतः पदार्थों का अन्वय पूर्व सिद्ध होने के कारण तात्पर्याशक्ति की आवश्यकता नहीं होती है। वाच्यार्थ ही वाक्यार्थ कहा जाता है।[16]

अन्विताभिधानवादियों के अनुसार–पदों से होने वाली पदार्थ प्रतीति सङ्केतग्रह के बाद होती है और यह सङ्केतग्रह व्यवहार द्वारा होता है। उदाहरणार्थ :– कोई छोटा बालक जिसे पदों तथा उनके अर्थों का ज्ञान नहीं है, वह अपने पिता आदि के पास बैठा है। पिता उसके बडे भाई या किसी अन्य को आदेश देते हैं 'गामानय'। बालक इस वाक्य को सुनकर उस व्यक्ति के कार्यव्यापार को देखता है। पिता 'गाम्बधान अश्वमानय' इत्यादि प्रकार का पुनः

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 679-683

आदेश देते हैं तथा वह बालक पुनः उस व्यक्ति के कार्यव्यापार को देखता है तथा धीरे–धीरे गाम, आनय, अश्वं, बधान इत्यादि पदों तथा उनके अर्थों को समझता है। इस प्रकार व्यवहार से सङ्केतग्रह होता है, इसके अतिरिक्त व्याकरण, उपमान, कोशशास्त्र, आप्तवाक्य आदि से भी सङ्केतग्रह होता है।[17] यह सङ्केतग्रह केवल पदार्थ में नहीं, अपितु किसी के साथ अन्वित पदार्थ में ही होता है। अतएव 'अन्वित' का ही 'अभिधान' अर्थात् 'अभिधा' से बोधन होने से 'अन्विताभिधान' ही मानना उचित है, ऐसा अन्विताभिधानवादियों का मत है।

संक्षेपतः साहित्याचार्यों ने वाचक, लक्षक तथा व्यंजक इन तीन प्रकार के शब्दों को स्वीकार किया है तथा वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ इस नाम से तीन प्रकार के अर्थों को भी मान्यता प्रदान की है। इन तीन प्रकार के अर्थों का बोध कराने वाली वृत्तियाँ भी तीन प्रकार की हैं, जिनके नाम अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना है। परन्तु मीमांसक आचार्य चौथे प्रकार के 'तात्पयार्थ' नामक अर्थ को भी अङ्गीकार करते हैं तथा उसके बोध के लिए तात्पर्या शक्ति को भी स्वीकार करते हैं। इन मीमांसक आचार्यों के भी दो मत हैं, जिनमें अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद के नाम परिगणित किये जाते हैं। अभिहितान्वयवाद का अर्थ है– अभिहितस्य अन्वय अर्थात् अभिहित पदार्थ का अन्वय। इसमें आकाङक्षा, योग्यता तथा सन्निधि की आवश्यकता होती है। इस मत के पोषक आचार्य कुमारिल भट्ट तथा उनके अनुयायी पार्थसारथि मिश्र हैं। इसी प्रकार अन्विताभिधानवाद का तात्पर्य है– 'अन्वितस्य अभिधानम्' अर्थात् अन्वित का अभिधान। इस मत के समर्थक आचार्य प्रभाकर और उनके अनुयायी शालिकनाथ मिश्र हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. अर्थो वाच्यश्य लक्ष्यश्च व्यङ्ग्यश्चेति त्रिधामतः। (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
2. स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा। (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
3. स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते। (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
4. तं च सङ्केतितमर्थं बोधयन्ती शब्दस्य शक्त्यन्तरानन्तरिता शक्तिरभिधा नाम।
   (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
5. 'तत्र शक्तिरीश्वरेच्छा या सङ्केत इत्युच्यते।'(अलङ्कारशेखर प्रथम रत्न, त0 म0)
6. 'मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
   रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।।' (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
7. ''मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
   अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।। (काव्य प्रकाश, द्वितीय उल्लास)
8. 'विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।
   स वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।।'' (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
9. ''यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।
   फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया।। (काव्य प्रकाश, द्वितीय उल्लास)
10. काव्य प्रकाश, द्वितीय उल्लास
11. काव्य प्रकाश, द्वितीय उल्लास
12. 'आकाङ्क्षा प्रतीतिपर्यवसानविरहः।' (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 679-683

13. 'स च श्रोतुर्जिज्ञासारूपः। (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
14. 'निराकाङ्क्षस्य वाक्यत्वे 'गौरश्वः पुरूषो हस्ती' इत्यादीनामपि वाक्यत्वंस्यात्।' (साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद)
15. योग्यता पदार्थानां परस्परसम्बन्धे बाधाभावः। – साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद
16. 'वाच्य एव वाक्यार्थ इति 'अन्विताभिधानवादिनः।' (काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास)
17. कोश व्याकरणाप्तोक्तिवाक्यशेषोपमादितः।
    प्रसिद्धपदसम्बन्धाद् व्यवहाराच्च बुध्यते।। (अलङ्कारशेखर 1/3)